रिपोर्टेबल

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल अपील संख्या 4560/2008

राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य --- अपीलकर्ता (गण)

बनाम

सत्य प्रकाश --- प्रत्यर्थी (गण)

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947:

धारा 33ए- सपठित धारा 33- एक दिहाड़ी मजदूर- बस कंडक्टर, जिसे एक जांच के बाद सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, द्वारा शिकायत- औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित कर दिया कि आरोप साबित हो गया है, लेकिन पिछले वेतन के बिना कामगार की बहाली का निर्देश- अभिनिर्धारित किया गया: जब प्रत्यर्थी सेवा की बहुत ही कम अवधि के दौरान कदाचार में लिप्त था जो विधिवत साबित हो गया था, सेवा में निरंतरता के साथ बहाली का अधिनिर्णय पारित करने का कोई अवसर नहीं था- एकल न्यायाधीश के साथ-साथ उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भी न्यायाधिकरण के आदेश को बरकरार रख कर वही त्रुटि की है-

शिकायत को खारिज कर दिया जाना चाहिए था- उच्च न्यायालय के निर्णय के साथ साथ न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय को भी, निर्णय में उल्लिखित को छोड़कर, रद्द कर दिया गया है- नतीजतन शिकायत खारिज हो जाती है।

धारा 33 और 33-ए- प्रकृति और दायरे की व्याख्या- अभिनिर्धारित किया गया: एक बार धारा 33 ए के तहत शिकायत का फैसला हो जाने के बाद, अधिनियम की धारा 33 के तहत आवेदन करने की स्वतंत्रता देने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

निर्णय

एच. एल. गोखले, न्यायाधीश

यह अपील राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा डी. बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 1093/2005 में दिनांक 21.10.2005 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें 19 जुलाई, 2005 को सिविल रिट याचिका संख्या 3933/2009 में उस उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय और आदेश के खिलाफ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया था, जिस निर्णय के द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण जयपुर द्वारा दिनांक 3.12.2002 को प्रकरण संख्या आई.टी. 41/1994 में दिये गए अधिनिर्णय को बरकरार रखा गया था।

2. श्री पुनीत जैन, विद्वान अधिवक्ता इस अपील के समर्थन में उपस्थित हुए और श्री शोवन मिश्रा, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए हैं।

इस अपील से जुड़े तथ्य इस प्रकार हैं:-

3. प्रत्यर्थी 8 मई, 1987 से अपीलार्थी- राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम (संक्षेप में एस. टी. निगम) के अधीन 20/- रुपए दैनिक वेतन पर बस कंडक्टर के रूप में काम कर रहा था। उसकी नियुक्ति केवल तीन महीने की अवधि के लिए थी, हालांकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुछ समय के लिए और जारी रही। यह आरोप लगाया गया था कि इस छोटी सी अवधि के दौरान भी ऐसे मामले सामने आए थे कि उसने कर्मचारियों के साथ दुर्व्यवहार किया और गाली-गलौज की भाषा का उपयोग किया और वह नशे की हालत में कार्यालय आता था। उसके खिलाफ एक एफ. आई. आर. भी दर्ज की गई थी। ऐसा हुआ कि जब वह 10 अक्टूबर, 1987 को सिरोही से जोधपुर के मार्ग पर ड्यूटी पर था, तो न्यायिक मजिस्ट्रेट, परिवहन के नेतृत्व में एक उड़ान दस्ते द्वारा उसकी बस की जांच की गई थी। यह पाया गया कि उस बस में 20 यात्री सवार थे। प्रत्यर्थी ने उन सभी से किराया एकत्र कर लिया था। हालांकि, ऐसा पाया गया कि $3^{1/2}$ टिकिट कम जारी किए गए थे। इसके मद्देनजर उसके खिलाफ विभागीय जांच कराई गई। प्रत्यर्थी को नोटिस

देने के बावजूद वह जांच में उपस्थित नहीं हुआ। अपीलार्थी ने आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत किए और जांच अधिकारी ने अभिनिर्धारित किया कि आरोप सिद्ध हो गया था। इसलिए, मंडल प्रबंधक, जोधपुर द्वारा पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को 20 नवंबर, 1987 से सेवा से बर्खास्त करने का निर्देश दिया गया था।

4. प्रत्यर्थी ने अपनी बर्खास्तगी से व्यथित महसूस करते हुए अपर सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ प्रभाग, जयपुर शहर के समक्ष 1572/1989 के रूप में एक सिविल वाद दाखिल किया। उस वाद में उठाया गया पहला मुद्दा यह था कि क्या प्रत्यर्थी की सेवा से बर्खास्तगी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध होने और कानून के अनुरूप न होने के कारण रद्द करने योग्य है। न्यायालय ने ध्यान दिया कि प्रत्यर्थी को पहले 27.10.1987 को और फिर 6.11.1987 को जांच में उपस्थित रहने के लिए नोटिस जारी किए गए थे, लेकिन वह उपस्थित नहीं हुआ। इसलिए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया था, लेकिन वह स्वयं सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और जांच अधिकारी के पास एकपक्षीय कार्यवाही करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था। सिविल न्यायालय ने इस पर भी ध्यान दिया कि प्रत्यर्थी ने अपने कथन में इस तथ्य को स्वीकार किया था कि जब 10 अक्तूबर, 1987

को बस की जांच की गई थी, तब उड़ान दस्ते ने यात्री-सूची (वे-बिल) पर आवश्यक टिप्पणी की थी, लेकिन उसने उस पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था। न्यायालय ने इस बात पर भी ध्यान दिया कि प्रत्यर्थी के इस आचरण ने साबित कर दिया कि वह नहीं चाहता था कि घटना की सच्चाई को रिकॉर्ड पर लाया जाए। इसलिए, सिविल न्यायालय ने पहले मुद्दे का फैसला अपीलार्थियों के पक्ष में किया। दूसरा मुद्दा सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित था। अपीलकर्ता ने अपने लिखित बयान में तर्क दिया था कि चूंकि संबंधित विवाद एक औद्योगिक विवाद था, इसलिए सिविल वाद संधारणीय नहीं था। हालांकि इस मुद्दे पर कोई निर्णय नहीं लिया गया। यह अपीलकर्ताओं के पक्ष में एक अन्य आधार पर तय किया गया था कि जयपुर में सिविल न्यायालय के पास इस प्रकार के प्रकरण की सुनवाई का अधिकार क्षेत्र इस कारण से नहीं था कि जोधपुर में वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था क्योंकि संभागीय प्रबंधक जोधपुर ने आदेश पारित किया था। इसलिए, वाद को उसके 24 नवम्बर, 1994 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

5. उस समय, अपीलकर्ता- एस.टी. निगम के कर्मचारियों की मांगों के संबंध में एक अन्य औद्योगिक विवाद श्रम न्यायालय/अधिकरण के समक्ष आई. टी. सं. 92/1986 के रूप में अवधारण के लिए लंबित था।

इसलिए, प्रत्यर्थी ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, (संक्षेप में आई. डी. अधिनियम) की धारा 33 ए के तहत राजस्थान औद्योगिक न्यायाधिकरण, जयपुर के समक्ष एक शिकायत दायर की, जिसे आई टी नं. 41/1994 के रूप में संख्यांकित किया गया था। हालांकि, प्रत्यर्थी ने यह खुलासा नहीं किया कि उसने पहले एक सिविल वाद दायर किया था जो खारिज हो गया था। प्रत्यर्थी ने दलील दी कि अपीलकर्ता को आई. डी. अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के तहत संबंधित न्यायाधिकरण/श्रम न्यायालय में अपनी कार्यवाही के अनुमोदन के लिए आवेदन करना चाहिए था। अपीलकर्ता ने ऐसा नहीं किया था, और इसलिए उसे सेवा से बर्खास्त करना कानूनन गलत था।

6. (i) विद्वान अधिकरण, जिसने शिकायत की सुनवाई की, ने अभिनिर्धारित किया कि एस.टी. निगम ने स्थायी आदेशों के तहत अपेक्षित विभागीय जांच नहीं कराई थी। यह अभिनिर्धारण अपीलकर्ता द्वारा अधिकरण में पेश इस साक्ष्य के बावजूद था कि प्रत्यर्थी जांच में उपस्थित नहीं हुआ, जबकि उसे व्यक्तिगत सुनवाई के नोटिस दिए गए थे। तथापि, अपीलकर्ता को अधिकरण में कदाचार साबित करने का अवसर दिया गया। अपीलकर्ता ने संबंधित अधिकारियों का शपथ पत्र दाखिल किया और उनसे जिरह की गई। प्रत्यर्थी ने भी अपना शपथ पत्र पेश किया और उससे भी जिरह की गई। न्यायाधिकरण ने अभिलेख पर

उपलब्ध साक्ष्यों की जांच की। न्यायाधिकरण ने इस बात पर ध्यान दिया कि निगम के गवाह पुरुषोत्तम दास पुरोहित, जो उड़न दस्ते के एक सदस्य थे, ने अपने बयान में कहा था कि बस में 20 यात्री थे, जिनमें से 3½ यात्री बिना टिकट के पाए गए थे। प्रत्यर्थी ने उन सभी के किराये की राशि पहले ही वसूल कर ली थी। तदनुसार, श्री पुरोहित ने अपनी टिप्पणियां यात्री सूची पर दर्ज की थीं। उस पर दो गवाहों और बस चालक के भी हस्ताक्षर लिए गए थे। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी ने यात्री सूची पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था। एक यात्री भंवर लाल गोयल, जो बिना टिकिट के थे, का बयान दर्ज किया गया और उसके हस्ताक्षर लिए गए। 3½ यात्रियों के बयान भी मौके पर दर्ज किए गए।

(ii) न्यायाधिकरण ने पैरा 9 में प्रत्यर्थी के शपथ पत्र का उल्लेख किया। उसने स्वीकार किया कि निरीक्षण दल के साथ उसकी कोई दुश्मनी नहीं थी। उसने स्वीकार किया कि बस का निरीक्षण उसी दिनांक को किया गया था। हालांकि, उसने इस बात से इनकार किया कि 3½ टिकट जारी नहीं किए गए थे। तथापि न्यायाधिकरण ने इस पर ध्यान दिया कि उसने अपने बयान को साबित करने के लिए कोई विशिष्ट सबूत पेश नहीं किया। इसलिए, अधिनिर्णय के पैरा 9 के अंत में अधिकरण ने निम्नलिखित शब्दों में निष्कर्ष निकाला:-

"इसलिए निगम के साक्ष्य से निरीक्षण के दौरान प्रार्थी द्वारा $3^{1/2}$ यात्रियों को बिना टिकट ले जाने और उनसे किराए की राशि पहले ही वसूल करने का आरोप निश्चित रूप से साबित हो जाता है।"

7. इस प्रकार, जैसा कि ऊपर देखा गया है, संबन्धित न्यायाधिकरण ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 9 में अभिनिर्धारित किया कि किराया प्राप्त करने के बावजूद साढ़े तीन टिकट जारी न करने का आरोप निश्चित रूप से साबित हो गया था। हालांकि न्यायाधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि अब मुद्दा यह है कि उस समय अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप शिकायत दायर की गई थी। इसलिए, दिनांक 3.12.2012 के अपने अधिनिर्णय द्वारा न्यायाधिकरण ने प्रत्यर्थी की बहाली का निर्देश दिया कि वह पिछले बकाया वेतन के बिना सेवा में बना रहेगा। यह निर्देश **जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड बनाम राम गोपाल शर्मा 2002 (2) एस. सी. सी. 244** के प्रकरण में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अधिकथित विधि का संदर्भ देते हुए था, कि धारा 33 (2) (बी) के गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप की गई बर्खास्तगी अप्रभावी मानी जाएगी। इस आदेश में उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंडपीठ

द्वारा भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है। इसलिए, यह अपील दाखिल की गई है। इस स्तर पर, हम इस बात पर ध्यान दे सकते हैं कि अपीलकर्ता ने न्यायालय के पहले के निर्णय के आधार पर न तो न्यायाधिकरण में और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष कोई निवेदन किया।

प्रतिद्वंद्वी पक्षों के तर्क और उनके विचारः -

8. (i) अपीलकर्ता आई. डी. अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के उल्लंघन के आधार पर प्रत्यर्थी को दी गई राहत से व्यथित है, क्योंकि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया था कि कदाचार साबित हो चुका था। अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री पुनीत जैन ने **भावनगर नगरपालिका बनाम अलीभाई करीमभाई और अन्य 1977 (2) एस सी सी 350** के प्रकरण में इस न्यायालय के फैसले की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, जिसमें इस न्यायालय ने पैरा 15 में यह अभिनिर्धारित किया है कि जब धारा 33ए के तहत शिकायत दर्ज की जाती है, तो यह पता लगाने के बाद कि क्या धारा 33 के प्रावधान का उल्लंघन हुआ है, तो श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण से यह अपेक्षा की जाती है कि वह धारा 33ए के तहत शिकायत का निस्तारण उसी प्रकार करे जैसे अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत संदर्भित है। वर्तमान मामले में भी दोनों पक्षों को न्यायाधिकरण के समक्ष विवाद के गुण-दोष पर

साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी, और फिर एक संदर्भ के रूप में निष्कर्ष निकाला गया। तर्क यह है कि उसके बाद कर्मचारी को अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के प्रारंभिक उल्लंघन का अभिवाक उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(ii) वैकल्पिक रूप से, यह तर्क किया गया है कि यह अनिवार्य रूप से धारा 33 के तकनीकी उल्लंघन का मामला है, और **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सिद्धार्थ चक्रवर्ती**, **2007 (7) एस. एस. सी. 670** के प्रकरण में इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के संदर्भ में कार्यवाही करने के लिए इस तरह के उल्लंघन की स्थिति में नियोक्ता को स्वतंत्रता प्रदान की है। इसलिए, यह निवेदन किया गया कि यदि अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुमोदन के लिए आवेदन करने में विफलता का आरोप है, तो वर्तमान मामले में भी अपीलकर्ता को ऐसी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वत अधिवक्ता श्री मिश्रा निवेदन करते हैं कि तथ्य यह है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 33 (2)(बी) का अनुपालन नहीं किया था, और, इसलिए उसे इसका परिणाम भुगतना होगा, और यह औद्योगिक अधिकरण द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण है, जिसकी पुष्टि विद्वत एकल न्यायाधीश के साथ-साथ उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा भी की गई है, और इस न्यायालय

को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह निवेदन करते हैं कि यदि इस स्तर पर अपीलकर्ता को धारा 33 (2) (बी) के तहत आवेदन करने की स्वतंत्रता दी जाती है, तो प्रत्यर्थी को भी बचाव करने का अवसर दिया जाए।

10. हमने दोनों अधिवक्ताओं के तर्कों पर गौर किया है। वर्तमान प्रकरण में, न्यायाधिकरण ने शिकायत का फैसला करते समय मामले के गुण-दोष पर एक संदर्भ रूप में विचार किया, पक्षकारों को पूरा अवसर दिया गया, और फिर 3.12.2002 के अपने अधिनिर्णय के पैराग्राफ 8 और 9 में अभिनिर्धारित किया कि किराया एकत्र करने के बावजूद साढ़े तीन टिकट जारी नहीं करने का आरोप साबित हो गया था। इस निष्कर्ष को उच्च न्यायालय द्वारा परिवर्तित नहीं किया गया है। सिविल न्यायालय ने भी अपने 24 नवंबर 1994 के फैसले और आदेश में यही निष्कर्ष दिया है, जिसे प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। इन दोनों कार्यवाहियों को प्रत्यर्थी/कर्मचारी द्वारा शुरू किया गया था और प्रकरण के गुण-दोषों के आधार पर उसके विरुद्ध निर्णय लिया गया था। तथापि, सिविल न्यायालय का निर्णय न तो प्रत्यर्थी द्वारा और न ही अपीलकर्ता द्वारा औद्योगिक अधिकरण के समक्ष पेश किया गया था। इस पृष्ठभूमि पर हमारे विचार करने के लिए जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 33ए के तहत की

गई कार्यवाही में उसकी सेवाओं को जारी रखते हुए बहाली का अधिनिर्णय देने में सही था, जो प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के प्रारंभिक उल्लंघन से उत्पन्न हुई थी।

11. इस संबंध में, हमें यह ध्यान देना चाहिए कि जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड (उपर्युक्त) में संविधान पीठ अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) की व्याख्या से संबन्धित थी, जो उस पर परस्पर विरोधी निर्णयों से उत्पन्न एक संदर्भ के संबंध में थी। तीन विद्वान न्यायाधीशों से मिलकर बनी इस न्यायालय की दो न्यायपीठों ने (1) **स्ट्रॉबोर्ड एमएफजी. कंपनी बनाम गोविंद (एआईआर 1962 एससी 1500)** और (2) **टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम एस. एन. मोदक (एआईआर 1966 एससी 380)** में यह दृष्टिकोण अपनाया था कि यदि अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) के तहत अनुमोदन नहीं दिया जाता है, तो बर्खास्तगी का आदेश उसी तारीख से अप्रभावी हो जाता है जिस तारीख को ऐसा आदेश पारित किया गया था। **पंजाब बेवरेजेज (पी) लिमिटेड बनाम सुरेश चंद [1978 (2) एस. सी. सी. 144]** में तीन विद्वान न्यायाधीशों की एक अन्य पीठ ने इसके विपरीत मत व्यक्त किया था। संविधान पीठ के समक्ष विचारार्थ भेजा गया प्रश्न इस प्रकार थाः- -

"यदि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33 (2) (बी) के तहत अनुमोदन नहीं दिया जाता है, तो क्या बर्खास्तगी का आदेश पारित किए जाने की तारीख से अप्रभावी हो जाएगा या उस तारीख से अप्रभावी हो जाएगा जिस तारीख को बर्खास्तगी के आदेश का गैर-अनुमोदन किया गया है और क्या धारा 33 (2) (बी) के तहत आवेदन करने में विफलता बर्खास्तगी के आदेश को निष्क्रिय नहीं बनाएगी?"

12. इस मुद्दे पर विचार करते हुए, न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 6 में उल्लेख किया कि धारा 33 को अधिनियमित करने के पीछे का उद्देश्य, जैसा कि 1956 में इसके संशोधन से पहले था, वह यह है कि किसी भी प्राधिकरण/अदालत/न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित औद्योगिक कार्यवाही को किसी भी अन्य औद्योगिक विवाद से प्रभावित हुए बिना शांतिपूर्ण वातावरण में पूर्ण करने की अनुमति दी जाए। समय के साथ, यह महसूस किया गया कि असंशोधित धारा 33 बहुत सख्त थी, क्योंकि इसने नियोक्ता द्वारा सेवा की शर्तों में कोई भी परिवर्तन करने या सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का कोई भी आदेश देने के अधिकार पर, ऐसे मामलों में भी जहां सेवा की शर्तों में ऐसा परिवर्तन या बर्खास्तगी या सेवामुक्ति का आदेश पारित करना किसी भी तरह से किसी औद्योगिक

प्राधिकरण के समक्ष लंबित विवाद से जुड़ा नहीं था, पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया था। इसलिए, धारा 33 को 1956 में संशोधित किया गया था ताकि नियोक्ता को ऐसे मामलो, जो लंबित औद्योगिक विवाद से संबंधित नहीं हैं, में सेवा की शर्तों में परिवर्तन करने या कर्मचारियों को बर्खास्त करने की अनुमति दी जा सके। साथ ही, यह भी आवश्यक समझा गया कि इसी के साथ कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए कुछ सुरक्षा उपाय किए जाने चाहिए और इसलिए यह प्रावधान किया गया कि यदि सेवा शर्तों में प्रस्तावित परिवर्तन या प्रस्तावित बर्खास्तगी/उन्मोचन किसी लंबित विवाद के संबंध में है तो नियोक्ता को पूर्व अनुमति के लिए आवेदन करना होगा। अन्य मामलों में जहां ऐसा प्रकरण लंबित नहीं है और जहां कर्मचारियों को सेवा मुक्त या बर्खास्त किया जाना है, (i) सबसे पहले बर्खास्तगी या सेवा समाप्ती का आदेश होना चाहिए, और फिर धारा 33 (2) (बी) के परंतुक में यह निर्धारित किया गया था कि (ii) संबंधित कर्मचारी को एक महीने के वेतन का भुगतान किया जाएगा, और (iii) संबंधित प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन करना होगा जिसके समक्ष नियोक्ता द्वारा की गई कार्यवाही के अनुमोदन के लिए पूर्व कार्यवाही लंबित है।

13. निर्णय के पैराग्राफ 13 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 33 का उल्लंघन अधिनियम की धारा 31(1) के तहत सजा का

प्रावधान करता है। इसलिए, धारा 33 (2) (बी) के प्रावधान की किसी नियोक्ता द्वारा अवज्ञा नहीं की जा सकती है। यह कर्मचारियों के हितों की रक्षा करने के लिए बनाया गया एक अनिवार्य प्रावधान है और यह औद्योगिक विवाद के विचाराधीन रहने के दौरान नियोक्ता द्वारा उत्पीड़न और अनुचित श्रम व्यवहार के खिलाफ एक कवच है। इसलिए, उक्त परंतुक का पालन किए बिना दिया गया आदेश निरर्थक और निष्प्रभावी है।

14. इस पर ध्यान देने के पश्चात्, इस न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 14 में जो मत व्यक्त किया गया है वह हमारे प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है। इस पैरा का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार हैः

> “14. जब धारा 33 (2) (बी) के परन्तुक के अधीन कोई आवेदन किया जाता है, वहां वह प्राधिकारी जिसके समक्ष नियोक्ता द्वारा की गई कार्यवाही के अनुमोदन के लिए कार्यवाही लंबित है, को यह जांच करनी होगी कि क्या पदच्युति या बर्खास्तगी का आदेश सद्भावपूर्ण है; क्या वह उत्पीड़न या अनुचित श्रम व्यवहार के रूप में था; क्या परंतुक में निहित शर्तों का अनुपालन किया गया था या नहीं आदि। यदि प्राधिकारी अनुमोदन देने से इनकार करता है तो स्पष्ट रूप से इसका मतलब है कि कर्मचारी

सेवा में बना रहेगा जैसे सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश कभी पारित नहीं किया गया था। **धारा 33 (2) (बी) को लागू करते हुए दिया गया बर्खास्तगी या सेवामुक्ति का आदेश जिस दिन पारित किया गया था उसी दिन से नियोक्ता और कर्मचारी के संबंध समाप्त हो जाते हैं लेकिन वह आदेश अधूरा रहता है क्योंकि यह उक्त प्रावधान के तहत प्राधिकारी के अनुमोदन के अधीन है। दूसरे शब्दों में, यह संबंध कानूनी रूप से तभी समाप्त होता है जब प्राधिकारी इसे अनुमोदन प्रदान करता है....”**

(बल दिया गया)

15. उसी पैरा में यह अधिकथित है कि यदि कोई कर्मचारी अनुमोदन से व्यथित है तो वह अधिनियम की खंड 33 ए के अधीन शिकायत दर्ज कर सकता है। इस धारा का एक निश्चित उद्देश्य है अर्थात न्यायाधिकरण तक सीधी पहुंच प्रदान करना और इस प्रकार अधिनियम की धारा 10 के तहत संदर्भ प्राप्त करने के लिए समय लेने वाली प्रक्रिया की मांग करने के बजाय त्वरित राहत प्रदान करना। तथापि, उस शिकायत में, कर्मचारी तभी सफल होगा जब वह यह सिद्ध करेगा कि कदाचार साबित नहीं हुआ है और अन्यथा नहीं, और यदि वह यह साबित करने में सफल होता है तो यह उस तारीख से संबंधित होगा

जिस तारीख को नियोक्ता द्वारा बर्खास्तगी आदेश पारित किया गया था मानो यह निष्क्रिय था। यह उपचार उन दंडात्मक परिणामों से स्वतंत्र है जिनका सामना नियोक्ता को अधिनियम की धारा 31 (1) के तहत धारा 33 के उल्लंघन के लिए अभियोजित होने पर करना पड़ सकता है। धारा 33 A निम्नानुसार हैः

> "33ए. **इस बारे में न्यायनिर्णयन के लिए विशेष उपबंध हैं कि क्या कार्यवाही विचाराधीन रहने के दौरान सेवा की शर्तों आदि में परिवर्तन किया गया है-** जहां कोई नियोक्ता कार्यवाही के विचाराधीन रहने के दौरान धारा 33 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है [किसी सुलह अधिकारी, बोर्ड, मध्यस्थ, श्रम न्यायालय, न्यायाधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के समक्ष] तो ऐसे उल्लंघन से व्यथित कोई कर्मचारी लिखित में [निर्धारित तरीके से] शिकायत कर सकता है -
>
> (क) ऐसे सुलह अधिकारी या बोर्ड को, और सुलह अधिकारी या बोर्ड ऐसे औद्योगिक विवाद के समाधान में मध्यस्थता करने और उसे बढ़ावा देने में ऐसे अनुपालन को ध्यान में रखेगा। और

(ख) ऐसे मध्यस्थ, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को और ऐसी शिकायत प्राप्त होने पर, यथास्थिति, **मध्यस्थ, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण परिवाद पर इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार इस प्रकार निर्णय करेगा मानो वह उसके समक्ष निर्दिष्ट या लंबित विवाद हो और अपना अधिनिर्णय संबन्धित सरकार को प्रस्तुत करेगा और इस अधिनियम के उपबंध तदनुसार लागू होंगे।"**

(बल दिया गया)

जैसा कि देखा जा सकता है, धारा 33ए का उप-खंड (बी) स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि जब ऐसी शिकायत दर्ज की जाती है, तो न्यायाधिकरण शिकायत पर निर्णय करेगा, मानो यह उसे भेजा गया विवाद हो, और वह अपना अधिनिर्णय उपयुक्त सरकार को प्रस्तुत करेगा, और इस अधिनियम के प्रावधान तदनुसार लागू होंगे। इस प्रकार, उस शिकायत में, कर्मचारी को गुणावगुण के आधार पर अपने मामले को साबित करना होगा।

16. **पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम ऑल इंडिया पंजाब नेशनल बैंक एम्पलाइज फेडरेशन एंड एक अन्य एआईआर 1960 एससी 160 वाले मामले** में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए एक निर्णय में

न्यायमूर्ति गजेंद्रकर (जैसा वह उस समय थे) ने धारा 33ए को अधिनियमित करने के पीछे के उद्देश्य और उसके दायरे को संक्षेप में समझाया था। इसके पैराग्राफ 31 में न्यायालय ने कहा कि देश में ट्रेड यूनियन आंदोलन ने शिकायत की थी कि धारा 10 के तहत संदर्भ मांगने की प्रक्रिया में समय लगा, और कर्मचारियों की शिकायत का निवारण पूरी तरह से उपयुक्त सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया; क्योंकि धारा 33 के उल्लंघन के मामलों में भी उपयुक्त सरकार धारा 10 के तहत विवाद को संदर्भित करने के लिए बाध्य नहीं थी। यही कारण है कि धारा 33ए का अधिनियमन इस बारे में न्यायनिर्णयन के लिए एक विशेष उपबंध करने के लिए किया गया कि क्या धारा 33 का उल्लंघन किया गया है। यह धारा इस तरह के उल्लंघन से पीड़ित एक कर्मचारी को न्यायाधिकरण को निर्धारित तरीके से लिखित रूप में शिकायत करने में सक्षम बनाता है और इसमे प्रावधान है कि ऐसी शिकायत प्राप्त होने पर न्यायाधिकरण उस पर इस प्रकार फैसला करेगा जैसे कि यह विवाद उसके समक्ष अधिनियम के प्रावधान के तहत विचार हेतु पेश किया गया है। इस प्रकार इस धारा के द्वारा पीड़ित कर्मचारी को अधिनियम की धारा 10 का सहारा लिए बिना न्यायाधिकरण की शरण में जाने का अधिकार दिया जाता है।

17. तत्पश्चात्, धारा 33ए के दायरे पर विचार करते समय न्यायालय ने उस समय यह क्षेत्र धारित करने वाले निर्णयों का सर्वेक्षण किया और पैराग्राफ 33 के अंत में निम्नलिखित शब्दों में अभिनिर्धारित कियाः

> "33..... **इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 33 ए के अधीन किसी जांच में कर्मचारी केवल नियोक्ता द्वारा किया गया धारा 33 का उल्लंघन साबित करके बहाली का आदेश प्राप्त करने में सफल नहीं होगा।** इस तरह के उल्लंघन के साबित होने के बाद भी नियोक्ता गुण-दोष के आधार पर आक्षेपित बर्खास्तगी को उचित ठहरा सकता है। यह विवाद का एक हिस्सा है जिस पर न्यायाधिकरण को विचार करना है क्योंकि कर्मचारी द्वारा की गई शिकायत को एक औद्योगिक विवाद के रूप में माना गया है और कथित विवाद के सभी प्रासंगिक पहलुओं पर धारा 33ए के तहत विचार किया जाना है। **अतः हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि धारा 33ए के अधीन जांच केवल इस प्रश्न के अवधारण तक सीमित है कि क्या नियोक्ता द्वारा धारा 33 के उपबंधों का कथित उल्लंघन साबित हो गया है या नहीं।"** (बल दिया गया)

इस निर्णय का उल्लेख किया गया है, और **दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम रामेश्वर दयाल के एआईआर 1961 एससी 689** में पैरा 7 में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा कथन को एक बार फिर दोहराया गया है।

18. **पी. एच. कल्याणी बनाम मैसर्स एयर फ्रांस कलकत्ता ए. आई. आर. 1963 सहकारी 1756** वाले मामले में संविधान पीठ के निर्णय में इस विधिक स्थिति को दोहराया गया है जिसे जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड (पूर्वोक्त) के पैरा 17 में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है। उस मामले में, प्रत्यर्थी नियोक्ता ने धारा 33 (2) (बी) के तहत आवेदन किया था, लेकिन कर्मचारी ने भी धारा 33ए के तहत एक आवेदन पेश किया था, जिसे एक संदर्भ की तरह सुना गया। उसमें पक्षकारों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे, और सबूतों के अपने मूल्यांकन पर श्रम न्यायालय ने माना था कि बर्खास्तगी उचित थी। इस न्यायालय ने उस निष्कर्ष को स्वीकार किया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुमोदन जब दिया जाएगा तो वह उस तारीख से संबंधित होगा जब बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया था। दूसरी ओर, यदि नियोक्ता कदाचार साबित करने में विफल रहता है, तो बर्खास्तगी का आदेश कर्मचारी द्वारा बर्खास्तगी आदेश पारित करने की तारीख से अप्रभावी हो जाएगा। इस विधिक स्थिति को समय-समय पर दोहराया

गया है (उदाहरण के लिए **लल्ला राम बनाम डी. सी. एम. केमिकल्स वर्क्स लिमिटेड 1978 (3) एस. सी. सी. 1** देखें)। जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास बैंक (उपर्युक्त) में संविधान पीठ ने स्ट्रावबोर्ड (उपर्युक्त) और टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (उपर्युक्त) में व्यक्त दृष्टिकोण का समर्थन किया और अभिनिर्धारित किया कि पंजाब बेवरेजेज (उपर्युक्त) में व्यक्त विचार सही नहीं है।

19. वर्तमान मामले में, न्यायाधिकरण ने स्वीकार किया कि दैनिक मजदूर के रूप में इस बहुत कम सेवा अवधि के दौरान प्रत्यर्थी ने कदाचार किया था जिसे विधिवत साबित किया गया था। ऐसा अभिनिर्धारित करने के बाद, अधिकरण से यह अपेक्षित था कि वह प्रत्यर्थी द्वारा दायर शिकायत को खारिज करे। यह प्रत्यर्थी के पक्ष में सेवा में निरंतरता के साथ बहाली का आदेश इस आधार पर पारित नहीं कर सकता था कि अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 33 (2) (बी) का उल्लंघन किया था। यह सच है कि अपीलकर्ता ने उस धारा के तहत आवश्यक अनुमोदन के लिए आवेदन नहीं किया था। यही कारण है कि प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 33ए के तहत परिवाद दायर किया गया था। उस शिकायत को दायर करने के बाद, इसे क़ानून द्वारा आवश्यक संदर्भ के रूप में अधिनिर्णित किया गया था। ऐसा किए जाने और कदाचार साबित किए जाने के बाद, अब यह अभिनिर्धारित करने का

कोई प्रश्न नहीं है कि सेवा समाप्ति अभी भी शून्य और निष्क्रिय बनी रहेगी। अपीलकर्ता द्वारा पारित बर्खास्तगी के आदेश की तारीख से नियोक्ता और कर्मचारी का कानूनी संबंध समाप्त हो जाएगा। वर्तमान मामले के तथ्यों में, प्रत्यर्थी की सेवा में निरंतरता के साथ बहाली का अधिनिर्णय पारित करने का कोई अवसर नहीं था, जब उसने सेवा की बहुत कम अवधि के भीतर कदाचार किया था, जो विधिवत रूप से साबित हो चुका था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खण्ड पीठ ने भी अधिकरण के आदेश को बरकरार रखने में त्रुटि की है।

20. चूंकि शिकायत का निर्णय एक संदर्भ की तरह किया गया था, और चूंकि हम यह अभिनिर्धारित कर रहे हैं कि इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए था, इसलिए हमें वैकल्पिक तर्कों में जाने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलकर्ता को धारा 33 (2) (बी) के तहत नए सिरे से आवेदन करने की स्वतंत्रता दी जाए, जैसा कि यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया (पूर्वोक्त) में निर्णय दिया गया है। हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि एक बार धारा 33ए के तहत शिकायत का फैसला हो जाने के बाद, ऐसी कोई स्वतंत्रता देने का कोई सवाल ही नहीं है। इसके अलावा, हम इस ओर ध्यान देना चाहेंगे कि यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया (सुप्रा) के मामले में "मामले की

पृष्ठभूमि के तथ्यों पर विचार करते हुए" जैसा कि उक्त निर्णय के पैरा 11 में कहा गया है, ऐसी स्वतंत्रता दी गई थी।

21. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी को तीन महीने की अवधि के लिए दैनिक वेतन कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था, और उसके बाद कुछ महीनों के लिए और उसे सेवा में रखा गया। उसके लगातार एक साल तक भी सेवा में रहने का कोई सवाल ही नहीं था, क्योंकि उसने स्पष्ट रूप से 240 दिन की सेवा पूरी नहीं की थी। सेवा की इस छोटी सी अवधि के दौरान उसके खिलाफ विभिन्न आरोप लगाए गए। अपीलार्थी उसे सेवा से हटा सकते थे, क्योंकि वह एक दैनिक मजदूर था। हालांकि, चूंकि कदाचार के आरोप थे, इसलिए उन्होंने उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया। बस की जांच के समय, प्रत्यर्थी ने वे-बिल पर हस्ताक्षर नहीं किए, न ही उसने जांच में भाग लिया, जिसमें उसे अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए बुलाया गया था। इसके कारण उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। उसने जयपुर में एक गलत अदालत में एक सिविल मुकदमा दायर करने का विकल्प चुना। सिविल न्यायालय, जिसने मुकदमे की सुनवाई की, ने यह अभिनिर्धारित किया कि कदाचार साबित हो चुका है, और बर्खास्तगी को दोषपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है। तथापि, उसी न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसके पास इस मुकदमे का विनिश्चय करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसलिए कदाचार

के संबंध में उस न्यायालय के निष्कर्ष को अलग रखा जा सकता है। हालांकि, जब प्रत्यर्थी ने धारा 33 ए के तहत शिकायत दायर की, तो औद्योगिक न्यायाधिकरण ने भी अपने अधिनिर्णय के पैराग्राफ 8 और 9 में यही निष्कर्ष दिया कि अपीलकर्ता ने कदाचार साबित किया था। ऐसी स्थिति होने के कारण, यह निष्कर्ष पूर्ववत से संबंधित होगा और पक्षों के बीच नियोक्ता कर्मचारी संबंध अपीलकर्ता द्वारा पारित बर्खास्तगी आदेश की तारीख से समाप्त हो गया माना जाएगा।

22. उपरोक्त कारणों से, सिविल अपील स्वीकृत की जाती है। हम इसके द्वारा डी. बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 1093/2005 में राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिए गए निर्णय और आदेश को निरस्त करते हैं, जिसमें 19 जुलाई, 2005 के निर्णय और आदेश के खिलाफ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया था, जो सिविल रिट याचिका संख्या 3933/2009 में उस उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दी गई थी, जिसमें प्रकरण संख्या आई. टी. संख्या 41/1994 में औद्योगिक न्यायाधिकरण, जयपुर द्वारा दिए गए 3.12.2002 के फैसले की पुष्टि की गई थी। प्रकरण संख्या 41/1994 में औद्योगिक न्यायाधिकरण, जयपुर के पैराग्राफ 8 और 9 में पाए गए निष्कर्षों को छोड़कर सभी तीन निर्णय इसके द्वारा रद्द किए जाते हैं। नतीजतन, कथित शिकायत मामला संख्या आई. टी. संख्या

41/1994 को रद्द किया जाता है जिसमे सिविल रिट याचिका संख्या 3933/2009 और डी. बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 1093/2005 पर किसी आदेश की आवश्यकता नहीं होगी। दोनों का निस्तारण किया जाता है। तथापि, वर्तमान मामले के तथ्यों में, हम लागत के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैं।

न्यायाधीश (एच. एल. गोखले)

न्यायाधीश (रंजन गोगोई)

नई दिल्ली

दिनांकः 9 अप्रैल, 2013

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' के जरिए अनुवादक की सहायता से किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय वादी के प्रतिबंधित उपयोग के लिए उसकी भाषा में समझाने के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।